अवध के शाहों और वज़ीरों का इमाम हुसैन[अ०] की अज़ा (शोक) में हिस्सा

जनाब मुम्ताज़ हुसैन जौनपुरी साहब / अनुवादकः मु० र० आबिद, लखनऊ

यह मालूमाती लेख असल में तीन लेखों का संकलन है, आधी सदी से पहले लिखा गया और मूल्यवान है। लेखक अपने समय का माना हुआ सामाजिक व्यक्तत्व था। इस लेख में 'कुछ' ताज़ियों, इमामबाड़ों और करबलाओं के चयन का मापक क्या रखा गया, नहीं पता। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण स्मारक जैसे इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब, इमामबाड़ा हसन रज़ा ख़ाँ और मस्जिद मुन्सिफ़ुद्दौला की बात न आना समझ में नहीं आया। इसके अलावा भी कई जगह आँखों को कुछ खटकता है। इस लेख के लिखने के समय के बाद जो कालान्तर से तबाही या पुनिर्माण हुए वह टिप्पणी चाहते हैं। ज़रूरत है लखनऊ के ऐसे मज़हबी स्मारकों के भरपूर शोध की। इस ओर नूरे हिदायत फाउण्डेशन का ध्यान भी है। इस सम्बन्ध में जानकार लोगों से निवेदन है कि वह भी ज़रूरी मालूमात देकर हमें आभारी करें। (सम्पादक)

नवाब शुजाउद्दौला और अज़ादारी

पानीपत युद्ध के समय कुछ दिनों नवाब शुजाउद्दौला दिल्ली में टिके। उन्हीं दिनों में मुहर्रम पड़ा। अहमद शाह को शुजाउद्दौला से बहुत प्यार था। मुहर्रम के समय काले कपड़े पहने हुए और काले पहनावे वाले समूह के साथ जो नंगे सर व नंगे पाँव थे मातम करते हुए अहमद शाह के आसन के सामने से निकले। उन लोगों के कन्धों पर अलम थे सीना पीटते जाते थे और खुल्लम-खुल्ला नौहे के बोल ज़बान से निकालते थे, हाँ तबर्रा के बोल होंटों में कहते थे। दुर्रानियों का इरादा हुआ कि उन पर हमला करें, मगर बादशाह (अहमद शाह) ने समझा दिया। (*तारीख़े अवध* उर्दू (अवध का इतिहास) द्वारा हकीम नज्मुल ग़नी)

नवाब आसफ़ुद्दौला वज़ीर (अवध) ताज़ियादारी धूमधाम से करते थे। ताज़िया देखते तो अंदर से नंगे पाँव निकलते। कम से कम पाँच रुपये और ज़्यादा से ज़्यादा हज़ार रुपये नज़र (चढ़ावा) करते। हर साल मुहर्रम में एक लाख रुपये का ख़र्च था। लखनऊ में बड़ा शानदान इमामबाड़ा बनवाया जो आसफ़ी इमामबाड़े के नाम से मशहूर है और संसार में इसके हाल से बड़ा कोई हाल नहीं है। दुनिया के बड़े-बड़े पर्यटक दूर-दूर से इसे देखने आते हैं। इसमें आसफ़ुद्दौला के काल में बहुत धूम से मजलिसें होती थीं और हज़ारों ग़रीब खाने, तबर्रुक (प्रसाद) और नज़र नियाज़ से लाभ पाते थे। रौज़ा ख़्वॉन मुल्ला मुहम्मद मजलिसें पढ़ते थे। अब भी मुहर्रम के अशरे (दस दिन) और दूसरे दिनों में मजलिसें होती हैं। बादशाह ने तीन साल तक स्वयं इसमें मजलिसों में भाग लिया। (देखिये, 'तिलिस्मे हिन्द' व 'तारीख़े अवध') हज़रत अब्बास की दरगाह के निर्माण की नींव इसी काल से शुरु हुई। आसफ़ुद्दौला के काल में सैकड़ों ताज़िये सोने चाँदी के बनाकर आसफ़ी इमामबाड़े में रखे जाते और साल में लगभग पाँच लाख रुपये इमामबाड़े की साज सज्जा में ख़र्च होते थे। 1211[हि०] में डॉ० ब्लीन के द्वारा दो ताज़िये बत्ती के साथ झाड़ फ़ानूस के साथ मंगवाने का हुक्म दिया गया और शर्त यह थी कि एक हरे रंग का ताज़िया हो और एक लाल रंग का। इसका मूल्य एक लाख तय हुआ था।

शाही (काल) के बड़े-बड़े हिन्दू महाशयों और इमाम हुसैन की अज़ा (शोक)

महाराजा मेवा राम इफ़्तिख़ारुद्दौला उपाधि थी, आसफ़ी काल में दीवान (प्रमुख उच्च सचिव) थे, दो तीन लाख रुपये वर्षिक मुहर्रम के अशरे में और पावन इमामों की वफ़ात (देहान्त) आदि के दिनों में ख़र्च करते थे।

(तारीख़े अवध, हिस्सा-4) रिसाला सवानेह उमरी संकलन मिर्ज़ा 'होश' में लिखा हैः-

महाराजा मेवाराम मुहर्रम के अशरे की ताज़ियादारी में हज़ारों रुपया ख़र्च करते थे, मुहर्रम के अशरे की मजलिसों के तीन सौ ज़ाकिर (मजलिस पढ़ने वाले) तय होते और शाम होते मजलिस शुरु होती और रात के अन्त तक समाप्त होती। बहुत से ज़ाकिरों को बड़ी-बड़ी धनराशियाँ प्रदान होती थीं।

राजा झाउलाल यह आसफ़ुद्दौला के काल में विभिन्न पदों पर थे। उनका इमामबाड़ा ठाकुरगंज लखनऊ में अब भी है जिसमें किसी समय में शिया शाही काल में बड़े धूमधाम से राजा झाउलाल मजलिस किया करते थे जिसमें नवाब इम्दाद हुसैन ख़ाँ साहब, वज़ीर अवध हर महीने की तेरहवीं को शाम के समय सम्मिलित होते थे।

नवाब सआ़दत अली ख़ाँ

नवाब की आदत थी कि छुट्टी के दिन भी नियमित काग़ज़ देखते थे यहाँ तक कि मुहर्रम के अशरे में भी यही हाल रहता था। बस आशूर के दिन काम न करते थे और कोठी फ़रहत बख़्श में जाकर बे-फ़र्श ज़मीन पर दो ज़ानू बैठते। यहाँ से पक्का पुल दिखता था। नवाब आसफ़ुद्दौला के इमामबाड़े में ताज़ियादारी होती थी। उस वक़्त में वहाँ की ज़रीह पुल पर होकर करबला में जाती थी, उधर देख-देख कर रोया करते थे। (देखिये, 'तारीख़े असलाफ़' संकलनः मौलाना अज़ीज़ुल्लाह शाह साहब 'विलायत', सज्जादा नशीन, न्योतिनी)

दरगाह हज़रत अब्बास जों बहुत लोकप्रिय है, में हाल इसी काल में नवाब साहब के आदेश से बढ़ा।

हुसैन की अज़ा और उससे जुड़ी बातों में सुन्नियों का हिस्सा

मुन्शी रौनक़ अली, मज़हब से सुन्नी, नवाब सआ़दत अली के मीर मुन्शी (प्रमुख सचिव) थे। एक बार मुहर्रम में पालकी पर सवार जाते थे, एक रंडी अपने दरवाज़े पर नियाज़ का खाना बांटती थी, उनकी सवारी देखकर आवाज़ दी कि मुन्शी साहब हिस्सा लेते जाइए। रौनक़ अली ख़ाँ ने सवारी रुकवाई और अपना दामन पालकी पर बिछा दिया और हिस्सा लिया।

नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

लखनऊ में सिकन्दर बाग़ से मिली एक शानदार इमारत हज़रत अली[अ०] के रौज़े की नक़ल का निर्माण इस बादशाह के हुक्म से हुआ जो शाहनजफ़ के नाम से मशहूर है। शाहनजफ़ में मजलिसों के लिए बादशाह ने बहुत बड़ी धनराशि ईस्ट इण्डिया कम्पनी में जमा कर दी जिससे अब तक मजलिसें आदि होती हैं। लखनऊ में कई जगह क़दम रसूल (रसूल मुहम्मद साहब का पावन चिन्ह) है लेकिन शाहनजफ़ के पास जो इमारत ऊँचाई पर है वह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने बनवाई थी। इसमें एक पत्थर का टुकड़ा है जो अरब से एक हाजी लाया था उस पर आप[स०] के पद की छाप (पद्चिन्ह) थी। ग़दर (1857[ई०] के संग्राम) में वह पत्थर गुम हो गया। ग़ाज़ीउद्दीन ने अपने बेटे नसीरुद्दीन की मन्नत बढ़ाने के लिए इंग्लैण्ड से एक बहूमूल्य बिल्लूर (Quartz) की ज़रीह तैयार कराके मंगवायी थी।

नसीरुद्दीन हैदर

इस बादशाह की मज़हबी अति और अज़ादारी का हाल 'अरबईन' (चेहल्लुम) तक अज़ादारी स्थापित करने वाले लेख में लिखा गया। 'तारीख़े अवध' में है कि बादशाह हज़ार जान दिल से इमामों[अ०] के प्यार में मगन थे और राजसत्ता और धन के होते हुए ईमान के जोश में अज़ादारी की हज़ारों रस्में करते थे। बादशाह चेहल्लुम तक ज़मीन के फ़र्श पर सोते थे। बादशाह बेगम और कुदसिया महल सोने और चाँदी की तौक़ और ज़ंजीरें बादशाह की गर्दन और कमर और पाँव में पहनाती थीं। मुहर्रम के दिनों में बादशाह सारी रातें जागकर काटते थे। लखनऊ मुहल्ले पार में एक शानदार करबला बनवायी और उसी में दफ़न है। (*'शबाबे लखनऊ'* और *'तारीख़े अवध'*)

मु'तमुद्दौला आग़ामीर, वज़ीर (प्रधानमंत्री) ग़ाज़ियुद्दीन बादशाह

आग़ामीर ने अपने वज़ीर होने के काल में मुहर्रम को बहुत विकास दिया। बादशाह से कहकर काले कपड़े का हुक्म लागू कराया। उन्होंने एक करबला बनवायी जिसमें मुहल्ला नरही, लखनऊ में और फ़ेरी मेसन लॉज

है। उनके बनवाये हुए इमामबाड़े में अब जुबिली कालेज, लखनऊ है।

मुहम्मद अली शाह

नसीरुद्दीन शाह के जीवन का बड़ा कारनामा हुसैनाबाद इमामबाड़े का बनवाना है जिसमें बादशाह की क़ब्र है और मुहर्रम के अशरे में और दूसरे दिनों में बहुत मजलिसें होती हैं। बादशाह ने इसके ख़र्च के लिए कई लाख रुपया ब्रिटेन सरकार को दिया जिसके ब्याज से अब तक धार्मिक काम, ख़ैरात और मजलिसें होती हैं। मुहर्रम में ऐसी उम्दा रौशनी होती है कि दूर-दूर से लोग देखने आते हैं।

अमजद अली शाह

अमजद अली शाह बहुत ज़्यादा मज़हबी बादशाह थे। उनके काल में ताज़ियादारी को बहुत बढ़ावा मिला। खुद हज़रतगंज में शानदार इमामबाड़ा बनवाया जिसमें धूमधाम से अज़ादारी होती है।

वाजिद अली शाह

मुहर्रम में बादशाह और दरबारी मातमी कपड़े पहनते थे। क़ैसरबाग़ में जो इमारत (सफ़ेद) बारादरी के नाम से मशहूर है, उसका नाम बैतुलबुका (रोने की जगह/शोकालय) था। मुहर्रम की शाही मजलिसें वाजिद अली शाह के काल में इसी में होती थीं।

वाजिद अली शाह ने हज़ारों 'सलाम', 'नौहे', 'मरसिये' कहे (रचना की) और अज़ादारी और ताज़ियादारी में इतनी लगन थी कि अकसर अज़ा के दिनों में अपना कला-कौशल्य दिखने के लिए मातमी बाजों में से ताशा इतना उमदा बजाते थे कि बड़े-बड़े कलाकार अचम्भे में चकरा जाते थे। जब मटिया बुरुज जाने लगे तो अपना ताज और तलवार लखनऊ में दरगाह हज़रत अब्बास में चढ़ा दिया। मटिया बुरुज में एक इमामबाड़ा बनवाया जिसमें उनकी क़ब्र है। मिर्ज़ा 'दबीर' और मीर 'अनीस' और दूसरे (ललित) कला के कुशल कमाल वालों के मान को पहचानते थे। इन लोगों ने अक्सर मजलिसें उनके अज़ाख़ाने में पढ़ीं:

वह प्याला टूट गया और साक़ी (मद बांटने वाला) न रहा।

चेहल्लुम तक ताज़ियादारी और काले पहनावे का आरम्भ

नसीरुद्दीन हैदर बादशाह, अवध नरेश, हुसैन[अ०] के अज़ादार के रूप में

यूँ तो खुदा जाने कब से और नहीं मालूम किस-किस धरती, बस्ती, उजाड़ और वनों में अलग-अलग जातियों ने माह मुहर्रम में हुसैन की अज़ा (शोक) की और इसका सिलसिला चेहल्लुम तक रहा। कुछ इतिहासकार लिखते हैं कि चेहल्लुम तक अज़ादारी का सिलसिला नियमित रूप से नवाब सआदत अली ख़ाँ, वज़ीर अवध के काल से किया गया लेकिन जहाँ तक पता चलता है इस क़ायदे के साथ चेहल्लुम तक ताज़ियादारी का चलन नसीरुद्दीन हैदर बादशाह अवध के काल से हुआ जैसा कि पुस्तिका 'सवानेह उमरी' द्वारा मिर्ज़ा मुहम्मद अब्बास साहब 'होश' प्रकाशित 1308[हि०] से साफ़ है। इसके समर्थन में हम अपने महाश्य जनाब सैय्यद असरार हुसैन ख़ाँ साहब की इजाज़त से उनके निबन्ध से कुछ लाइनें नीचे लिखते हैं:

नसीरुद्दीन हैदर ने अपने तख़्त (सिंहासन) पर बैठने से पहले मनौती (मन्नत) मानी थी कि अगर मुझे कभी राजसिंहासन मिलेगा तो मैं बजाए अशरे (मुहर्रम के पहले दस दिन) के चेहलुम (इमाम के चालीसवें) तक (अर्थात चालीस दिन आगे तक) अज़ादारी किया करूँगा। इसलिए इस वचन का कड़ाई से पालन करते रहे। राज के बाग़ों में जितने खुश्बू वाले फूल पैदा होते थे वे और उनके अलावा बाज़ारों से पाँच हज़ार रुपये के फूल मुहर्रम के अशरे तक मोल आते थे। उस ज़माने में खुश्बू वाले फूल बड़े-बड़े आदमियों को भी मुश्किल से मिलते थे। बादशाह का विश्वास इन कामों में इतना बढ़-चढ़ कर था कि मुहर्रम की पहली तारीख़ को सौ-पचास ताज़िये राजद्वार से तय जगह तक अपने सर पर रखकर पहुँचाते थे और हर बार के आने जाने में कई कोस ज़मीन पर नंगे पाँव (लोग) चले जाते थे और यह आना-जाना कंकरियों की ज़मीन पर नंगे पाँव होता था यहाँ तक कि तलवों में वह कंकरियाँ काँटों की तरह

खटकती थीं। चेहलुम तक ज़मीन के फ़र्श पर सोते थे। मुहर्रम के दिनों में सारी रातें जाग कर काटते थे। सुबह से शाम तक हर महल में अकसर स्वयं बादशाह मरसिया पढ़ते और नौहे पढ़ते फिरते थे। बस चालीस दिन बादशाह को रोते कटते थे। उन दिनों में फरिश्ते की मजाल न थी कि वह किसी दुनिया के काम की बात बादशाह के सामने कर सकता। कम कोई महीना ऐसा होता था कि आधा महीना इन कामों में नहीं बीतता था। हर तरह आधा साल रोने पीटने में अज़ादारी के साथ बीतता था। हज़रत बादशाह की नियति थी मुहर्रम में दावतें नहीं देते थे और भोग विलास ऐश की सभी चीज़ों को दिल दिये हुए थे, उन सबको छोड़ देते, नाच रंग बिल्कुल बंद हो जाता था। अंग्रेज़ी चाव की जो चीज़ें उन्हें जी से पसन्द थीं उन सब को छोड़ देते थे। सभी माल और राजकीय काम उस ज़माने में स्थगित हो जाते थे। मुहर्रम के अशरे से चेहलुम तक दिन रात रोना, ज़मीन पर सोना, आस्मानी (Indigo) रंग के या काले कपड़े, होंटों पर 'हाय-वाय', भूले से न मुस्कुराना, हज़ारों रुपये मरसिया पढ़ने वालों और रोज़ी-रोटी को तरसते ग़रीबों को देना, ख़ैरात करना, आदि ताज़ियादारी की उन्नति इस काल में हुई और चेहलुम में ताज़िये दफ़्न करना भी उसी काल से हुआ। बादशाह का ताज़िया जो ग़ाज़ीयुद्दीन हैदर के राजकाल में इंग्लैण्ड से बनकर आया था, हरे क्वाट्र्ज़ का ढला हुआ था और उस पर सुनहरा मीना किया हुआ था। बादशाह मातमी कपड़े (काले या आसमानी) पहने और सर पर मोर के परों का ताज रखे वाक़िया ख़्वान (मजलिस पढ़ने के एक प्रकार का ज़ाकिर जो 'वाक़िया' यानी करबला की घटनाओं को बयान करता है।) के सामने बैठते थे। पुस्तिका 'सवानेह उमरी' में इस तरह लिखा हैः ''नसीरुद्दीन हैदर इमाम हुसैन की ताज़ियादारी और इमामों की मुहब्बत की विशेषता में (अपने) समय के एक और (अपने) काल में न्यारे थे, और चेहलुम तक ताज़ियादारी और काला पहनावा उन्हीं के शुरु किये हैं। सभी महल (रानियाँ) और दरबारी चेहलुम तक काले कपड़े में होते, और ऊँचे पदों का हरेक राजकर्मी काला या आसमानी कपड़ों में होता। यह नहीं सम्भव था कि चेहलुम के दिनों में कोई भी मातमी (सोग वाले) पहनावे के बिना वहाँ से गुज़र जाता। ताज़ियादारी का सामान बड़ी शान और गरिमा से किया जाता। बारह सौ सादात दस-दस रुपये महीने के तन्ख़्वाह पर नौकर होते। ताज़िया ख़ानों में नियुक्त सैकड़ों ज़ाकिर और मरसिया पढ़ने वाले मजलिसों में होते। मुहर्रम के अशरे बाद हलवे के थाल जो सादात में बाटे दस सेर (लगभग 1001 किलो) के होते। इसी तरह खीर के बहुत बड़े कटोरे और सोने चाँदी की तौक़ और ज़ंजीरें सैकड़ों सादात में बाँटे जाते थे। चेहल्लुम के दिनों में मजलिस, नौहा मातम के अलावा कोई सरकारी काम न होता। शहर की प्रजा में जैसे हिन्दु आदि में भी चेहलुम के दिनों कोई ख़ुशी का सामान नहीं हो सकता था।

शाही काल के कुछ मशहूर ताज़िये

मुम्ताज़ुद्दौला का ताज़िया

मुहम्मद अली शाह के राजकाल में नवाब नासिरुद्दौला असग़र अली ख़ाँ की बीवी यानी नवाब मुम्ताज़ुद्दौला की माँ ने बड़ी तामझाम से ताज़िया उठाया। यह महिला चेहलुम में हज़ारों रुपया ख़र्च करती थीं। सारा शहर जमा होता था। यह ताज़िया अब प्रिंस नवाब बाक़र मिर्ज़ा साहब, मुतवल्ली, हुसैनाबाद के मकान से चेहलुम को उठता है।

रांगे वाली ज़रीह

यह ज़रीह पीर ख़ाँ की गढ़ी मुहल्ले से उठती थी। इसमें बड़े-बड़े (रईस/राजसी) लोग भाग लेते थे और शाही काल के बाद तक उठती रही।

बख़्शो का ताज़िया

मुहम्मद बख़्शो काग़ज़ी वाजिद अली शाह के काल में था। यह पहले सुन्नी था फिर शिया हो गया। फूल बत्ती का काम करता था। वाजिद अली शाह खुद इसके ताज़िये की ज़ियारत (दर्शन) को आते थे। शाही स्टाफ़ सिर्फ़ इसी ताज़ियों में जाता था।

बादशाह ने बख़्शो की श्रद्धा से खुश होकर पूछा कि क्या माँगते हो? उसने कहा कि कुछ नहीं सिर्फ़ शाही स्टाफ़ इस ताज़िये में भाग ले। इसलिए ऐसा आदेश लागू

हो गया। पहले यह ताज़िया सराय मा'ली ख़ाँ से उठता था। अब मुफ़्तीगंज से उठता है।

मुसम्मात (नाम की) कबीरन का ताज़िया

शाही काल में यह ताज़िया हाता मिर्ज़ा अली ख़ाँ से बड़ी धूम-धाम से उठता था। सब औरतें भाग लेती थीं। रात में ताज़िया उठता था। कोई मर्द पास भी जाने न पाता था। यह ताज़िया शीदी सफ़दर हुसैन की माँ उठाती हैं और औरतें मातम करती हुई इसको मुहल्ला नवाज़गंज के नजफ़ में ले जाती हैं।

ताबूत सकीनाः

वाजिद अली शाह के काल में ख़ाक-पाक (करबला की पवित्र मिट्टी) करबला मुअल्ला से एक बुज़ुर्ग सै० मेहदी हसन साहब लाये और दियानतुद्दौला की करबला में ज़रीह रखी गई। शाही आदेशों से राजकर्मी काले कपड़े पहन कर ज़रीह के स्वागत को गये। ताबूत सकीना नाम की वह ज़रीह क़ैसरबाग़ बारादरी इमामबाड़ा ''बैतुल बुका'' (शोकालय) तक बड़ी व्यस्था के साथ लाई गई। यह 25 मई 1854ई० की घटना है। (*'तारीख़े अवध'*)

शाही काल के मशहूर इमामबाड़े और करबलाएं

अवध के पिछले शासक और उनके राजयिक और वज़ीरों की दुखभरी याद के साथ ताज़ियादारी और अज़ादारी में उनकी लगन भी आज एक ऐतिहासिक शोक काव्य है। वह सब धरती में सो रहे मगर लखनऊ की ज़मीन पर उनके बनवाये सैकड़ों शानदार इमामबाड़े और करबलाएं आज भी हुसैन की याद के साथ-साथ उन लोगों के मज़हबी उत्साह का धुन्धला नक़्शा सामने कर रहे हैं। एक अंग्रेज़ इतिहासकार ने यहाँ इमामबाड़ों की बहुतात का कारण यह लिखा कि शहर की आबादी इतनी बढ़ गई थी कि नये मकान बनाने की इजाज़त नहीं मिलती थी, इसलिए ज़्यादा राजयिक करबला और इमामबाड़े के नाम से इजाज़त लेकर अपनी स्मारक के रूप में ये इमारतें बनवाते थे। हो सकता है यह कारण सही हो लेकिन असल में यह निर्माण धर्म श्रद्धा और नेक काम पर आधारित है। ये निर्माण उनके जीवन का बड़ा नैतिक नमूना दिखा रहे हैं। इनके आधार में मौत की याद भी यूँ छिपी रहती थी कि उनके बचाने वाले अपनी ही करबला में ही दफ़न होने की वसीयत कर जाते थे जिसका सबूत निम्न के बयान और इमारतों से मिलेगा। सुनसान में क़ब्र का अकेलापन का ध्यान जब सताता रहा तो करबलाओं की कोठरियों के बसने वालों का सहारा ढूंढा गया।

हर हाल से इन इमारतों की कोठरियों में आज भी कितने बेघर, ग़रीब और निर्धन पनाह लिए हुए हैं और ग़रीबी के मारे जीवन की कड़वी घड़ियाँ काट रहे हैं। दुख और सीख के असर से यह बात भी ख़ाली नहीं कि लखनऊ के सैकड़ों इमामबाड़े खोद डाले गये, बहुत से इमामबाड़े गिरवी या बिककर बनवाने वालों के वारिसों की लापरवाही या संसार माया की वजह से दूसरों के हाथ चले गये और दूसरे रूपों में इस तरह बदल गये कि आज उनका पहचानना मुश्किल है। कुछ इमामबाड़ों के कुछ निशान अभी बाक़ी हैं पर सुबह शाम में मिटने ही को हैं।

नीचे सिर्फ़ कुछ-कुछ करबला और इमामबाड़े के संक्षिप्त बयान पता लगा-लगा कर लिख दिये जाते हैं कि बेगुनाह बन्दियों की तरह उनके बयान के लिए ये पन्ने बन्दीगृह का काम दें।

मुन्शी फ़ज़्ल हुसैन की करबला और सौदागर बाक़र का इमामबाड़ा शाही काल के बाद बने हैं इसलिए ऐसे इमामबाड़ों का बयान नहीं किया गया।

बाहर के आने वाले पर्यटकों (Tourist) की क्या बात, लखनऊ के रहने वाले खुद इमामबाड़ों को नहीं जानते हैं। हुसैन पर रोने वाले हुसैन से सम्बन्धित होने वाले इमामबाड़े और करबलाओं का दृश्य ज़रा लखनऊ में आकर देखें। लखनऊ की सैकड़ों मातती अन्जुमनें हुसैन की मातमदारी में लगी हैं वे पहले से इमाम हुसैन की अज़ा की यही सेवा करते आये हैं। वहीं दुनिया के और किसी हिस्से में ऐसी अन्जुमनें हों जो इन स्मारकों को बाक़ी रखने की ओर ध्यान देती जिनके बेबस और मरहूम स्थापकों को आज सूरा फ़ातिहा की ज़रूरत है और उनके बनवाये हुए इमामबाड़े और करबलाएं दुख और खेद के घर बनते जा रहे हैं। कुछ करबलाओं की टूटी-फूटी हालत पर रात में जंगल के जानवर आकर रो जाते हैं और टूटी हुई करबला की ज़बान से यह नौहा सुनते हैं:-

संसार में अब कोई एक सहानुभूति करने वाला नहीं है इसलिए अपने दर्द व्यथा को दीवार से कहता हूँ।

दरगाह हज़रत अब्बास

लखनऊ में यह दरगाह मुहल्ला रुस्तम नगर में है और बहुत मानी हुई (मक़बूल) ज़ियारत की जगह (दर्शन स्थल) है। इसके बनने के इतिहास को कम ही लोग जानते होंगे। इतिहास से यह मालूम हुआ है कि मिर्ज़ा फ़क़ीर नामी, निवासी रुस्तम नगर ने असफ़ुद्दौला के काल में यह सपना देखा कि एक बड़े व्यक्त उन से कह रहे हैं कि शहर के बाहर सरफ़राज़गंज और मूसाबाग़ में अलम ज़मीन में दफ़न है, जाकर निकाल लाओ। इसलिए कुछ दोस्तों के साथ जाकर मिर्ज़ा ने ज़मीन कई जगह से खोदी और अलम निकला। तब मिर्ज़ा से लोगों ने कहा कि बेशक यह ख़ॅाब सच्चा है और यह अलम हज़रत अब्बास का है। नवाब असफ़ुद्दौला अपनी किसी सेविका से नाख़ुश हुए और उसकी नाक कटवाने का हुक्म दिया। उस सेविका ने नाख़ुशी दूर होने की इसी अलम के सामने दुआ माँगी और बादशाह की नाख़ुशी दूर हो गई। इस तरह बादशाह को उसके द्वारा इस अलम की ख़बर हुई। बादशाह के एक भरोसे वाले मिर्ज़ा के घर अलम देखने आये। बादशाह ने उन से सब हाल सुनकर जहाँ अलम रखा था एक पक्की ईंटों का गुम्बद (कलस) बनवा दिया फिर नवाब सआदत अली ख़ाँ ने मन्नत (मनौती) मानी कि अगर आसफ़ुद्दौला के बाद उनको लखनऊ का राज मिल जाए तो वह सोने का गुम्बद बनवा देंगे। जब नवाब सआदत अली ख़ाँ को गद्दी मिली तो ईंटों के गुम्बद को सोने का करा दिया और विशाल दरगाह बनवा दी और उसके दो हिस्से बनवाये एक मर्दों की दरगाह और दूसरी ज़नानी (औरतों की) दरगाह। उन के मरने पर ग़ाज़ीयुद्दीन बादशाह हुए और उन्होंने ऊँचा नक़्क़ार ख़ाना (ढोल की जगह) बनवाया और नौबत और घड़ियाल रखा गया। नसीरुद्दीन हैदर शाह अवध के काल में नवाब मलका ज़मानिया ने इस दरगाह की रसोई बनवायी। उस समयसे जो नया बादशाह होता था वह दरगाह में सलाम को आता था। शहर में दूल्हा-दुल्हन यहाँ सलाम के लिए उसी समय से आने लगे। ग़दर (1857 का संग्राम) में और सामान के साथ अलम भी लुट गया। मिर्ज़ा फ़क़ीर की क़ब्र मर्दानी दरगाह में गुम्बद के पच्छिम की ओर है।

जब वाजिद अली शाह अवध का राज छोड़कर कलकत्ता (अब नाम कोलकाता हो गया) जाने लगे तो अपना ताज और तलवार इस दरगाह में चढ़ा गये थे। ग़दर के दिनों में ये चीज़ें भी मिट गयीं और अलम भी। ग़दर के बाद नवाब अमीरुद्दौला मरहूम सुपुत्र नवाब रुक्नुद्दौला सुपुत्र नवाब सआदत अली ख़ाँ ने एक हौज़ 1295हि० में इस दरगाह में बनवाया जो अब तक है। इसकी मरम्मत कई बार महाराजा महमूदाबाद ने करा दी।

करबला तालकटोरा

यह करबला सआदत अली ख़ाँ के राजकाल में पचास पक्के बीघा ज़मीन लेकर हाजी मसीता की देखरेख में बनी। इमारत के लिए जो मिट्टी खोदी गयी वह ताल जैसी हो गयी इसलिए इसका नाम तालकटोरा हुआ। इसमें शियों के ताज़िये दफ़न होते हैं। 1232हि० में यह बनी। इसका दूसरा नाम करबला मीर खुदा बख़्श ख़ाँ है जिन्होंने इसको बनवाया था। इसी के पास एक गुंबद है जिसको क़त्लगाह (हत्या-स्थली) या ख़ैमागाह (तम्बू स्थली) कहते हैं।

करबला अज़ीमुल्लाह ख़ाँ

मुहम्मद अली शाह के राजकाल में इमाम रज़ा के रौज़े की नक़्ल (समरूप) इस करबला को अज़ीमुल्लाह ख़ाँ, जो मुहम्मद अली शाह के साथी थे, ने बनवाया। यह तालकटोरे की करबला के पास है। अज़ीमुल्लाह ख़ाँ इसी में दफ़न हैं।

करबला हाजी मसीता

हाजी मसीता सआदत अली ख़ाँ के राजकाल में दरोग़ा, तामीरात (निर्माण प्रभारी) थे, उन्होंने यह करबला तालकटोरे के पास बनवा दी जो अब अच्छी हालत में नहीं है।

करबला अमीनुद्दौला

यह तालकटोरे की करबला से मिले मुहल्ला सिपाह के पास है। इसको अमीनुद्दौला इम्दाद हुसैन ख़ाँ, वज़ीर (प्रधानमंत्री), अमजद अली शाह ने बनवायी।

इसकी नींव सुल्तानुल उलमा ने रखी। 1266हि० में इसका निर्माण हुआ। यह हज़रत अब्बास के रौज़े की नक़ल है। वाजिद अली शाह आशूरा और चेहल्लुम को यहाँ जाते थे।

करबला हैदरी

इसक करबला को मुहम्मद अली शाह के दरोग़ा आशिक़ अली ने बनवाया था। नवाब मलका जहाँ ने इस करबला को उनसे ले लिया। ये बड़े हज़रत की करबला कही जाती है और ऐशबाग़ में है।

करबला नवाब मल्का जहाँ

करबला हैदरी के पास मल्का जहाँ ने हज़रत अब्बास के रौज़े की नक़ल बनवायी। ख़त्ते सुलुस (त्रिकोणीय लिपि-अरबी की एक लिपि स्टाइल) के कत्बे (लेख) उत्तम नमूने के हैं।

जन्नतुल बक़ी उर्फ़ फ़ात्मैन

यह इमारत आसिफ़ी काल में नवाब सआदत अली ख़ाँ के राजकाल में बनी। यह दरगाह हज़रत अब्बास के पास रुस्तम नगर में है।

जन्नतुल बक़ी'

ताल कटोरे की करबला जाते हुए गुम्बद जैसी इमारत बायें हाथ पर पड़ती है इसको ग़ल्ती से लोग हज़रत हुर का रौज़ा या मुस्लिम के यतीमों (अनाथों) का रौज़ा कहते हैं। नसीरुद्दीन हैदर के काल में नत्थू ईंट ठेकेदार ने 1833ई० में यह इमारत बनवायी। यह हज़रत सैयदा के रौज़े की नक़ल है।

करबला रफ़ीक़ुद्दौला

यह काकोरी जाते हुए सड़क के पास अब्बास बाग़ में है। मुहम्मद अली शाह के काल में उनके साथी मीर इमाम अली ख़ाँ ने इसको बनवाया।

करबला मुसाहिबुद्दौला

वाजिद अली शाह के काल में मुसाहिबुद्दौला ने इसको बनवाया। यह मिस्री की बग़या के पास है।

करबला दियानतुद्दौला

वाजिद अली शाह के राजकाल में दियानतुद्दौला ख़्वाजासरा (किन्नर जो महल के सेवक और परहरी होते थे) ने मुहल्ला सआदत गंज में बनवाया।

इमामबाड़ा मीर अली सोज़ ख़्वान

इस इमामबाड़े का पता नहीं। 'हयाते दबीर' के पेज 62 पर केवल इतना पता चलता है कि इसमें किसी मजलिस में मिर्ज़ा 'दबीर' सम्मिलित थे।

इमामबाड़ा हैदरी वैश्या

यह इमामबाड़ा महमूद नगर में है जिसको वाजिद अली शाह के राजकाल में हैदरी ने बनवाया।

इमामबाड़ा इकरामुल्लाह ख़ाँ

आसफ़ुद्दौला के काल में इकरामुल्लाह ख़ाँ ने इसे बनवाया। अब यह गिरी हालत में पुराने नक्ख़ास में है।

इमामबाड़ा तजम्मुल हुसैन ख़ाँ

यह मुहल्ला कटरा अबुतुराब में है। तजम्मुल हुसैन ख़ाँ इसी में दफ़न हैं।

इमामबाड़ा दाराब अली ख़ाँ

यह दाराब अली ख़ाँ ख़्वाजासरा ने मुहल्ला मोलवीगंज में इसे बनवाया था। इससे जुड़ा एक वक़्फ़ भी है।

इमामबाड़ा बशीरुद्दौला

अब इसका कुछ पता नहीं है।

इमामबाड़ा अनीसुद्दौला

छोटे ख़ाँ डहाढ़ी ने जिसका वतन दिल्ली था, यह इमामबाड़ा बनवाया था। अब इसमें सदर तहसील है।

इमामबाड़ा नौरोज़ अली

यह इमामबाड़ा दरगाह हज़रत अब्बास के पास रुस्तम नगर में आग़ा मिर्ज़ा नसीरुद्दीन बादशाह के दूध-शरीक भाई ने बनवाया। अब यह खुद गया है।

दरगाह दवाज़दह (बारह) इमाम

इस इमारत को ग़ाजियुद्दीन हैदर शाह की रानी बादशाह बेगम ने बनवाया था जिसमें बारह कमरे थे। यह इमारत खुद गयी।

इमामबाड़ा मिर्ज़ा अबुतालिब ख़ाँ

यह सबसे पहला इमामबाड़ा है जो लखनऊ में बना। यह इमामबाड़ा नवाब शुजाउद्दौला के काल में बना। यह मुहल्ला शुतरख़ाना और आइनाबीबी बाग़ में स्थित है जो दफ़्तर नहर के पास है। यह तहसीनगंज के निवासी नवाब हुज़ूर जानी के क़ब्ज़े में है।

इमामबाड़ा अतीक़ुल्लाह

यह इमामबाड़ा मुहल्ला नबहरा में था। अब नहीं रहा।

इमामबाड़ा नवाब माशूक़ महल

शिवपुरी मुहल्ले में था, मस्जिद अभी बाक़ी है, इमामबाड़ा बाक़ी नहीं है।

इमामबाड़ा मोनिस

मिर्ज़ा अली अकबर मोनिस ईरानी ने इमामबाड़ा बनवाया जिसका पता नहीं। (अक़्दे सुरैया पृ० 49)

इमामबाड़ा कौड़ी वाला

मीर ज़ैनुल आब्दीन कौड़ी वाले बादशाह औरंगज़ेब के वज़ीर के ख़ानदान के थे। सराय म'आली ख़ाँ के कालीचरण स्कूल के कैम्पस में इन्हीं का इमामबाड़ा, कुँआ और मस्जिद है। यह अलमास अली ख़ाँ के यहाँ नौकर थे। यह इमारत आसफ़ी काल की है।

इमामबाड़ा अलमास अली ख़ाँ

अलमास अली ख़ाँ ख़ॉजासरा चकलादार थे। इनका इमामबाड़ा आसफ़ी काल का है और इमामबाड़ा आसफ़ी से मिलता-जुलता है। यह इमामबाड़ा टूटी-फूटी हालत में अब तक सरा म'आली ख़ाँ में बाक़ी है।

इमामबाड़ा मल्का ज़मानी

नसीरुददीन हैदर के काल में मल्का ज़मानी बेगम बादशाह ने टीला पीर जलील के पास बनवाया था जो अभी बाक़ी है मल्का ज़मानी इसी में दफ़न है।

इमाम बाड़ा केवाँ जाह

करबला तालकटोरा के पास है। केवाँ जाह मलका ज़मानी के पहले पति के बेटे थे। इस इमामबाड़े में केवाँ जाह की क़ब्र है।

इमामबाड़ा क़ुद्सिया महल, करबला नसीरुद्दीन हैदर

शिया कालेज के पास डालीगंज स्टेशन के सामने है। इसमें क़ुदसिया बेगम, पत्नी नसीरुद्दीन हैदर और ख़ुद नसीरुद्दीन हैदर बादशाह दफ़न हैं, नसीरुद्दीन के काल की इमारत है।

करबला मल्का आफ़ाक़

मल्का आफ़ाक़ मुहम्मद अली शाह की बियाहता बीवी थीं। इसे डालीगंज में मल्का आफ़ाक़ ने हाजी मुहम्मद अली के माध्यम से तैयार कराया था। इसका नाम अस्करियैन भी है।

क़दम रसूल, सिकंदर बाग़

शाहनजफ़ के पास ग़ाज़ियुद्दीन बादशाह ने बनवाया था। इसमें एक पत्थर का टुकड़ा रखा था जो अरब से एक हाजी लाये थे। पत्थर पर रसूल मक़बूल के पैर का निशान था। इमारत बाक़ी है, पत्थर ग़दर में मिट गया।

क़दम रसूल, रुस्तम नगर

यह इमारत बहुत पुरानी है। अब तक बाक़ी है। हो सकता है, आसफ़ी काल की इमारत हो या शेख़ों के ज़माने की हो। हज़रत अब्बास की दरगाह जाते हुए रास्ते में यह इमारत पड़ती है।

इमामबाड़ा इमादुद्दौला

नवाब जाफ़र अली ख़ाँ नवाब सआदत अली ख़ाँ वज़ीर अवध के बेटे थे जो 1851ई० में मरे। उन्होंने हज़रत गंज में इमामबाड़ा बनवाया था और उसी में दफ़न हुए। इसको मक़बरा इमादुद्दौला भी कहते थे। दिसम्बर 1934ई० में खुद गया।

इमामबाड़ा जर्रारुद्दौला

यह इमामबाड़ा शाही समय में था। हादी अली ख़ाँ बहादुर जर्रारुद्दौला अली नक़ी के सगे सम्बन्धी थे। अब इस इमामबाड़े का पता नहीं।

इमामबाड़ा मिफ़्ताहुद्दौला

यह इमामबाड़ा खुद गया। यह उस जगह था जहाँ पर जहाँगीराबाद पैलेस हज़रतगंज के पास स्थित है। यह मिर्ज़ा मुहम्मद अली ख़ाँ वाजिद अली शाह के काल में कप्तान थे।

इमामबाड़ा झाउलाल

राजा झाउलाल दीवान आसफ़ुद्दौला के काल में थे। ठाकुरगंज में उन्होंने यह इमामबाड़ा और इसके सामने एक मस्जिद बनवायी थी जो टूटी-फूटी हालत में है इसमें किसी समय शिया बैतुलमाल (कोषागार) था। इसकी छत गिर गयी है।

रौज़ा काज़मैन

राय जगन्नाथ अग्रवाल जाति के, बिज़नेस मैन,

उपाधि शरफुद्दौला, गुलाम रज़ा ख़ाँ (मुसलमान होने के बाद यह नाम रखा) ने इसे बनवाया। यह अमजद अली शाह बादशाह के काल में बड़े पदों पर थे। यह मन्सूर नगर में है और रौज़ा काज़मैन की नक़्ल है।

करबला मुन्सिफ़ुद्दौला

सैय्यद बाक़र मुन्सिफ़ुद्दौला सुल्तानुल उलमा के बड़े बेटे ने जो अमजद अली शाह के काल में उच्च न्यायालय के प्रभारी थे, महदीगंज में करबला बनवायी। अज़्मतुद्दौला ने बहुत रुपया ख़र्च करके इसकी मरम्मत करायी। अब यह करबला अज़्मतुद्दौला के नाम से मशहूर है।

इमामबाड़ा सिब्तैनाबाद

हज़रतगंज में जो अमजद अली शाह का इमामबाड़ा कहा जाता है। अमजद अली शाह इसी में दफ़्न हैं।

शाहनजफ़

सिकंदर बाग़ के पास ग़ाज़ीयुद्दीन हैदर बादशाह ने हज़रत अली[अ०] के रौजे नजफ़ की नक़्ल बनाया। ग़ाज़ियुद्दीन हैदर बादशाह और उनकी बेगम मुबारक महल इसमें दफ़्न हैं। दूर-दूर से लोग इसके दर्शन को आते हैं।

नजफ़, नवाज़गंज

अमजद अली शाह के राजकाल में यह बनी। अभी है। इस जगह बहुत से शिवालय भी हैं।

काला इमामबाड़ा

मुहल्ला पीर बुख़ारा में है। अन्दर से रंगा हुआ है, इसलिए इसको काला इमामबाड़ा कहते हैं। इस इमामबाड़े को आसफ़ुद्दौला के सगे मामूँ सालारजंग के बेटे नवाब क़ासिम अली ख़ाँ ने बनवाया। असली काला इमाम बाड़ा नवाब मिर्ज़ा हसन रज़ा ख़ाँ सरफ़राज़ुद्दौला ने बनवाया था जो आसफ़ुद्दौला के वज़ीर थे। असली काला इमामबाड़ा खुद गया जो रूमी दरवाज़े के पास था जहाँ गुईन गार्डेन है।

इमामबाड़ा आग़ा बाक़र

शुजाउद्दौला वज़ीर अवध के काल में आग़ा बाक़र ख़ाँ इस्फ़ेहानी पाँच हज़ार सवार के रिसालादार (ब्रिगेडियर) थे। जिस समय यह इमामबाड़ा बना है आग़ा अबूतालिब के अलावा कोई दूसरा इमामबाड़ा लखनऊ शहर में न था। यह पहले बहुत बड़ा इमामबाड़ा था अब खुद कर एक छोटा सा इमामबाड़ा रह गया है।

इमामबाड़ा मलका जहाँ

शियों की जामा मस्जिद के पास अधूरा इमामबाड़ा है। मल्का जहाँ मुहम्मद अली शाह की दूसरी बीवी थीं। इमामबाड़ा बनने न पाया था कि मुहम्मद अली शाह का देहान्त हो गया। अब सिर्फ़ खम्बे बाक़ी हैं।

इमामबाड़ा हुसैनाबाद

यह मुहम्मद अली शाह बादशाह ने बनवाया। पहले यह जगह जहाँ इमामबाड़ा बना जमनिया बाग़ कही जाती थी। बीस लाख में यह इमामबाड़ा बना है। इससे जुड़ा बहुत बड़ा वक़्फ़ है और मुहम्मद अली शाह इसमें दफ़्न हैं।

इमामबाड़ा आसफ़ी

नवाब आसिफ़ुद्दौला बहादुर ने अकाल के समय बनवाया। किफ़ायतुल्लाह आर्किटैक्ट दिल्ली ने इसका नक़्शा बनाया था। पचास लाख से एक करोड़ तक इसके बनवाने का अनुमान है। दस साल में यह बना है।

इमामबाड़ा तहसीन अली ख़ाँ

नवाब नाज़िर मुहम्मद तहसीन अली ख़ाँ, नवाब शुजाउद्दौला के पैसे से ख़रीदे ग़ुलाम (दास) था, उसका यह इमामबाड़ा चौक में तहसीन अली ख़ाँ की मस्जिद के पास बना है। इसमें तहसीन अली ख़ाँ दफ़्न हैं।

इमामबाड़ा सिकन्दर शिकोह

शहज़ादा सिकन्दर शिकोह तैमूरी शहज़ादा मिर्ज़ा मुहम्मद अकबर शाह दिल्ली के सगे भाई थे, उन्होंने बाग़ पड़ायन के पास ज़मीन ख़रीद कर यह इमामबाड़ा बनवाया। इसमें अब सुन्नियों का दारुलयतामा (अनाथालय) है। यह नवाब सआदत अली ख़ाँ के काल में जनरल मैक ल्यॉड इंजीनियर के प्रबन्धन में बना।

इमामबाड़ा धनिया महरी

यह कहारी नसीरुद्दीन हैदर के काल में थी। इसकी उपाधि (ख़िताब) अफ़ज़लुन्निसा (महिलाओं में सर्वश्रेष्ठ) था। आलम नगर में इसकी मस्जिद के पास ही इमामबाड़ा रहा होगा। अब बाक़ी नहीं है।

इमामबाड़ा जाफ़री बेगम

यह नवाब मल्का जहाँ के यहाँ दरोग़ा (प्रबन्धक) थीं। नवाज़गंज में उन्होंने करबला बनवायी थी, अब बाक़ी नहीं।

इमामबाड़ा नवाब अख़तर महल

तहसीनगंज में यह इमामबाड़ा वाजिद अली शाह के वज़ीर (प्रधानमंत्री) अपनी बेटी अख़तर महल के लिए बनवा रहे थे इतने में ग़दर हो गया और इमामबाड़ा अधूरा रहा।

इमामबाड़ा बख़्शो

बख़्शो एक काग़ज़ी था जो सराय म'आली ख़ाँ में वाजिद अली शाह के राजकाल में रहता था। सुन्नी से शिया हो गया था। काग़ज़ के फूल बूटे बनाता था। उसने मस्जिद और इमामबाड़ा बनवाया था। इमामबाड़े के कुछ निशान सराय म'आली ख़ाँ में अब तक बाक़ी है। मस्जिद बिल्कुल अच्छी हालत में है। 22 सफ़र को हर साल उसके नाम से ताज़िया अब तक मुहल्ला मुफ़्तीगंज से उठता है।

इमामबाड़ा बसंत अली ख़ाँ

इमामबाड़ा मुज़फ़्फ़रुद्दौला, इमामबाड़ा दियानतुद्दौला, इमामबाड़ा अहसनुद्दौला शाही काल के स्मारक और अनगिनत इमामबाड़ों की तरह थे वह इस तरह खुद कर बराबर हो गये कि सिर्फ़ पुराने इतिहास में नाम रह गया।

इमामबाड़ा ग़ुलाम हुसैन

चौलखी क़ैसरबाग़ के पास यह इमामबाड़ा था जिसका अब कुछ पता नहीं।

इमामबाड़ा सैय्यद मुहम्मद बनारसी

मुफ़्तीगंज में यह इमामबाड़ा अब भी बाक़ी है। वाजिद अली शाह के काल की इमारत है। इसमें हर साल मीर 'अनीस' मरहूम मजलिस पढ़ते थे।

इमामबाड़ा गम्मो ख़ाँ

हाता मिर्ज़ा अली ख़ाँ में था। कुछ साल हुए खोद डाला गया।

इमामबाड़ा लाडो ख़ानम

यह इमामबाड़ा सआदतगंज में है।

इमामबाड़ा मीर अब्बास खॉस वाले

तहसीनगंज में यह इमामबाड़ा हामिद अली ख़ाँ बैरिस्टर के मकान के पीछे था, अब खोद डाला गया है।

करबला मु'तमुद्दौला

हज़रतगंज और लालबाग़ के पास है। इसमें स्काच फ्री मैसन लॉज है। यह करबला नसीरुद्दीन हैदर के शासनकाल में बनी थी और आग़ामीर ने इसे बनवाया था।

इमामबाड़ा आग़ामीर

जो इमारत अब बदले हुए रूप में जुबिली स्कूल है वह पहले आग़ामीर का इमामबाड़ा था। अब इसके पास की इमारत बाक़ी नहीं।

इमामबाड़ा मीरन साहब*

मीरन साहब वाजिद अली शाह के शासनकाल में थे। आग़ा बाक़र के इमामबाड़े को जाते हुए इनका बनवाया हुआ इमामबाड़ा पड़ता है।

इमामबाड़ा सैय्यद तक़ी साहब

चौक में तहसीन की मस्जिद के पीछे यह इमामबाड़ा है जो वाजिद अली शाह के राजकाल में सैय्यद मुहम्मद तक़ी साहब क़िब्ला मुजतहिद[अ०म०] की यादगार अब तक बाक़ी है।

---

* यहाँ यह इमामबाड़ा मीरन साहब नहीं है। यह इमामबाड़ा (ज़ुब्दतुल उलमा) सैय्यद अली नक़ी की बात है। सैय्यद अली नक़ी (सैय्यदुल उलमा) सै० हुसैन (उर्फ़ मीरन साहब) के बेटे थे और अमजद अली शाह के राजकाल में ज़कात के आवंटन के प्रभारी थे। उनकी मस्जिद और कोठी भी इमामबाड़े के पास है।